माँसाहार या व्याधियों का आगार !

–उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म.

पौष्टिकता की एक सशक्त भ्रान्ति :

टुण्ड्रा प्रदेश हिमाच्छादित ऐसा भूभाग है, जहाँ वनस्पति का नामो-निशान भी नहीं। सर्वत्र श्वेत ही श्वेत रंग व्याप्त रहता है। हरित वर्ण के दर्शन भी नहीं होते हैं। प्रकृति ने अपनी वनस्पति शून्यता से वहाँ की एस्कीमो जाति को माँसाहारी बना दिया है। माँस भक्षण ही उनकी जीवनी शक्ति का एक मात्र आधार है। एस्किमो लोगों की आयु मात्र तीस वर्ष तक सीमित रहती है। है न एक चौंका देने वाला तथ्य! किन्तु इससे भी अधिक चौंकाने वाली तो यह भ्रांति है कि सामिष भोजन निरामिश की अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक है। सचमुच यह एक आधारहीन धारणा है। वस्तुस्थिति तो यह है कि माँसाहार आहार के समस्त प्रयोजनों को पूर्ण ही नहीं कर पाता। आहार से शरीर की आवश्यकताएँ पूर्ण होनी चाहिए। इसमें वे सारे तत्व होने चाहिए जो मानवदेह को वर्धमान बनाने में, शक्ति प्रदान में, रोग प्रतिरोध में, दीर्घायु में, स्वस्थ रखने में अपेक्षित समझे जाते हैं। माँसाहार में अनेक तत्व तो शून्यवत् हैं, जैसे कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, विटामिन आदि। यह आहार ऊर्जा का भी कोई संबल स्रोत नहीं है। मूँगफली जैसा एक साधारण शाकाहारी पदार्थ जितनी मात्र से ५७० कैलोरी ऊर्जा देता है, उतनी ही मात्रा में माँस और अण्डा केवल ११४ और १७३ कैलोरी ऊर्जा दे पाता है। भला फिर इसे क्यों कर पौष्टिक आहार माना गया।

वस्तुतः केवल माँसाहार पर निर्भर रहकर कोई व्यक्ति स्वस्थ एवं निरोग जीवन नहीं बिता सकता। अनेक महत्वपूर्ण और अनिवार्य तत्वों के अभाव में वह अनेक रोगों से घिर जायेगा और उसकी बढ़ती हुई कार्यक्षमता सीमित रह जायेगी।

माँसाहार रोगों का जनक :

माँसाहारी देशों में ब्रिटेन का प्रमुख स्थान है। अनुभवों और दुष्परिणामों के आधार पर उस देश का बी. बी. सी. टेलीविजन स्वयं यह प्रचारित करने लगा है कि मानव जाति को माँसाहार जनित घातक रोगों से सावधान रहना चाहिए। ये घातक रोग मनुष्य को उस समय से ही ग्रस्त करने लग जाते हैं, जब वह गर्भस्थ होता है। अमेरिका का एक सर्वेक्षण यह सूचना देता है कि वहाँ ४७ हजार बच्चे इस कारण जन्मजात रोगी होते हैं कि उनके अभिभावक, विशेषतः माता माँसाहारी होती है। माँ का रक्त इस आहार के कारण दूषित और विकृत हो जाता है और इस रक्त से पोषण पाकर गर्भस्थ शिशु में रोगों का बीजपवन हो जाता है। ये बच्चे आयु पाकर भी पूर्ण स्वस्थ नहीं रह पाते। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. हो.) के बुलेटिन की चर्चा करते हुए डॉ. नेमीचन्द ने उल्लेख किया है कि–"माँसाहार से मनुष्य के जिस्म (शरीर) में १६० बीमारियाँ दाखिल हो सकती है, अड्डा जमा सकती हैं। ख्याल रहे बीमारियों की यह संख्या कम नहीं है। इनमें से कुछ तो ऐसी हैं जो जानलेवा है और कुछ लाइलाज है।"[1] वनस्पति जगत् प्राणीजगत् के रोगों का कोई प्रभाव ग्रहण नहीं करता अतः शाकाहार सर्वथा शुद्ध और निरापद होता है। किन्तु पशु को अपने रोग भी होते हैं, वह अन्य स्रोतों से भी रोग ग्रहण कर लेता है और अपने इन रोगों को अपने माँस द्वारा उन मनुष्यों के शरीर में भी प्रविष्ट करा देता है, जो उसका आहार करते हैं। माँसाहार इस प्रकार संकटपूर्ण बना रहता है। माँसाहार जनित रोग "जूनोसिस" कहलाते हैं। ये जूनोसिस चार प्रकार के होते हैं–

(१) डायरेक्ट जूनोसिस वे रोग है जो रुग्ण पशु के माँस भक्षण से सीधे ही उत्पन्न हो जाते हैं (२) साइक्लो जूनोसिस में रोग इस प्रकार सीधे अपने स्रोत से मानवदेह तक नहीं पहुँचता। किसी जीव जन्तु को रोग हो, उसका माँस अन्य पशु खाए और इस अन्य पशु के माँस का आहार जब मनुष्य करें तो यह पहले वाले जीव जन्तु के रोग से ग्रस्त हो जाता है। टेपवार्म का रोग इसी प्रकार का होता है। यह साइक्लो या चक्रिक या आवर्ती इसी कारण कहा गया है। (३) रीढ़ विहीन जन्तुओं के सेवन से मेरा जूनोसिस रोग होते हैं, यथा प्लेग (४) जूनोसिस का चौथा प्रकार "सेपरो" होता है। इसमें पहले कोई रुग्ण जीव जन्तु अपने रोग के कीटाणु पेड़ पौधों पर मिट्टी अथवा जल पर फैला देते हैं। अन्य पशु उनसे रोगग्रस्त हो जाते हैं। मनुष्य इन पशुओं से कीटाणु ग्रहण कर रुग्ण हो जाते हैं। लारवा, माइग्रन्स आदि रोग इसी प्रकार के होते हैं।

रोगियों के एक व्यापक सर्वेक्षण[2] से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि संक्रामक एवं घातक रोग शाकाहारियों की अपेक्षा माँसाहारियों में बहुलता के साथ मिलते हैं। एक और अन्तर इन दो प्रकार के रोगियों में यह पाया गया कि माँसाहारी रोगियों के ये रोग शाकाहारियों की अपेक्षा अधिक गम्भीर और तीव्र होते हैं। शाकाहारी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ प्रतीत होते हैं। वे शान्त और मननशील भी होते हैं। जिन देशों में माँसाहार सामान्य और बहुप्रचलित है, वहाँ हृदयाघात, कैंसर, रक्तचाप, मोटापा, गुर्दे के रोग, कब्ज, अनेक प्रकार के संक्रामक रोग, जिगर के रोग, पथरी आदि घातक रोग अत्यधिक हैं। असंख्यजन इन रोगों से बुरी तरह ग्रस्त मिलते हैं। भारत, जापान आदि देशों में इन रोगों का व्यापकत्व अपेक्षाकृत कम है। यहाँ माँसाहार की प्रवृत्ति भी इतनी अधिक नहीं है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि इन घातक रोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का माँसाहार से सीधा सम्बन्ध है। आस्ट्रेलिया विश्व का सर्वाधिक माँसाहार वाला देश है। वहाँ १३० किलोग्राम प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति खपत तो अकेले गोमांस की ही मानी जाती है। इसी देश में आँतों का कैंसर भी सबसे अधिक होता है। इस समस्या के समाधान स्वरूप विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा शाकाहार को अधिकाधिक अपनाए जाने का परामर्श दिया जा रहा है। अमेरिका के डॉक्टर इ. बी. ऐमारी और इंगलैण्ड के डॉ. इन्हा ने तो अपनी पुस्तकों[४] में यह स्पष्ट स्वीकारोक्ति भी की है कि अण्डा जहर है। डॉ. आर. जे. विलियम्स (ब्रिटेन) की मान्यता है कि सम्भव है कि आरम्भ में अण्डा सेवन करने वाले कुछ स्फूर्ति अनुभव करें किन्तु आगे चलकर उन्हें मधुमेह, हृदयरोग, एग्जीमा, लकवा जैसी त्रासद बीमारियाँ भोगनी पड़ती है। अण्डा कोलेस्टेरोल का सबसे बड़ा अभिकरण माना जाता है, माँस भी इससे कुछ ही कम है। कोलेस्टेरोल का यह अतिरिक्त भाग रक्तवाहिनियों की भीतरी सतह पर जम जाता है और उन्हें संकरी कर देता है। परिणामतः रक्तप्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और उच्च रक्त चाप एवं हृदयाघात जैसे भयावह रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आँतों का अलसर अपेंडिसाइटिस और मलद्वार का कैंसर भी माँसाहारियों में अति सामान्य होता है। माँसाहार से रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है जो जोड़ों में जमा होकर गठिया जैसे उत्पीड़क रोगों को जन्म देता है। सामिष भोजन के निरन्तर सेवन से पेचिस, मंदाग्नि आदि रोग हो जाते हैं। कब्ज रहने लगता है, जो अन्य अनेक रोगों को जन्म देता है। आमाशय दुर्बल हो जाता है और आँतें सड़ने लग जाती है। वास्तव में मनुष्य का पाचन संस्थान शाकाहार के अनुरूप ही संरचित हुआ है, माँसाहार के अनुरूप नहीं। त्वचा की स्वस्थता के लिए विटामिन-ए की आवश्यकता रहती है जो टमाटमर, गाजर, हरी सब्जी आदि में उपलब्ध होता है। माँसाहार विटामिन शून्य आहार है, अतः एग्जीमा आदि अनेक त्वचा रोग हो जाते हैं, मुंहासे निकल आते हैं। मासिक धर्म सम्बन्धी स्त्री रोगों की अधिकता भी माँसाहारियों में ही पायी जाती है।

माँसाहार मानव देह की रोग प्रतिरोधक शक्ति को भी कम कर देता है। परिणामतः रोगी साधारण से रोग का सामना भी नहीं कर पाता और रोग बढ़ते हुए जटिल होता जाता है। एक रोग अन्य अनेक रोगों को अपना संगी बनाने लगता है। माँसाहार बुद्धि को मन्द तथा स्मृति को कुण्ठित भी कर देता है। शारीरिक व मानसिक विकास भी सामिष आहार के कारण बाधित हो जाता है।

माँसाहार के विकार : रोगों के लिए अधिक जिम्मेदार :

सामिष पदार्थ स्वयं ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, रोगों के उत्पादक होते हैं। तिस पर भी यह और बढ़ोत्तरी की बात है कि वे प्रायः दूषित और विकृत अवस्था में प्राप्त होते हैं। यह स्थिति माँसाहार को और अधिक घातक बना देती है। "करेला पहले ही कड़वा और ऊपर से नीम चढ़ा" वाली कहावत इस प्रसंग में सर्वथा सार्थक और समीचीन प्रतीत होती है। विशेषता इसके साथ यह भी जुड़ी रहती है कि इन पदार्थों का दूषित और विकृत होना–साधारणतः दृष्टिगत भी नहीं होता, उसे पहचाना नहीं जा सकता। अतः ऐसे हानिप्रद पदार्थों से आत्म रक्षा के प्रयत्न की आवश्यकता भी नहीं अनुभव होती और उनसे बचा भी नहीं जा सकता है।

उदाहरणार्थ ब्रिटेन में लगभग ५० लाख लोग प्रतिवर्ष सालेमोनेला से प्रभावित होते हैं। अण्डे व चिकिन की सड़ी हुई अवस्था में उनका उपभोग करने से यह फूडपोइजनिंग की घातक स्थिति बनती है। कुक्कुट शाला के १२ प्रतिशत उत्पाद इस प्रकार दूषित पाये जाते हैं। गर्भवती महिलाओं का गर्भपात और गर्भस्थ शिशु का रुग्ण हो जाना भी इसके परिणाम होते हैं। अण्डा ८° सेलसियस से अधिक तापमान में रहे तो १२ घण्टे के बाद वह सड़ने लग जाता है। भारत जैसे उष्ण देश में तापमान अधिक ही रहता है और अण्डा कब का है, यह ज्ञात नहीं हो पाता–ऐसी स्थिति में विकृत अण्डे की पहचान कठिन कार्य हो जाती है। न्यूनाधिक रूप में ये दूषित ही मिलते हैं। अण्डे का जो श्वेत कवच या खोल होता है, उसमें लगभग १५ हजार अदृश्य रंध्र (छेद) होते हैं जिनमें से अण्डे का जलीय भाग वाष्प बनकर उड़ जाता है और तब अनेक रोगाणु भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं और वे अण्डे को रोगोत्पादक बना देते हैं। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अमेरिका में चालीस हजार लोग प्रतिवर्ष दूषित अण्डों व माँस के सेवन से रुग्ण हो जाते हैं!

माँसाहार प्राप्ति के प्रयोजन से जिन पशुओं की हत्या की जाती है, उनका स्वस्थ परीक्षण नहीं किया जाता। व्यावसायिक दृष्टिकोण भी रोगी पशुओं को इस निमित्त निर्धारित कर देता है। पशुओं में (अण्डों में भी) प्रायः कैंसर, ट्यूमर आदि व्याधियां होती है। माँसाहारी इस सबसे परिचित होता नहीं और दुष्परिणामतः दूषित माँस उदरस्थ होकर उपभोक्ता को इसे ही रोग उपहार में दे देता है। माँसाहारी जब स्वयं चिन्तन करें कि वे कैसे अंधकूप की डगर पर बढ़े चले जा रहे हैं।

पशु जब वध के लिए वधशाला लाए जाते हैं तो वे बड़े भयभीत और आतंकित हो जाते हैं। प्राकृतिक रूप से मल विसर्जित हो जाता है जो रक्त में मिलकर उसे विषाक्त बना देता है। इसी प्रकार माँस के मल मूत्र, वीर्य, रक्तादि अनेक हानिकारक पदार्थ मिल जाते हैं। वध से पूर्व भी पशु छटपटाता है, भागने का प्रयत्न करता है, उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, नथुने फड़कने लगते हैं, मुँह से फेन आने लगते हैं। इस असामान्य अवस्था में उसके शरीर में "एड्री-नालिन" नामक पदार्थ उत्पन्न हो जाता है जो उसके माँस में मिश्रित हो जाता है। इस माँस के सेवन से यह घातक पदार्थ माँसाहारी के शरीर में जाकर अनेक उपद्रव करता है, उसे रूग्ण बना देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रेनबग नामक एक कीड़ा ऐसा होता है जो पशु को काटता है और इससे पशु पागल हो जाता है। किन्तु पागलपन का यह प्रभाव अस्तित्व में रहते हुए भी लम्बे समय तक अप्रकट रूप में रहता है। कभी-कभी तो इसमें दस वर्षों का समय भी बीत जाता है कि सभी को वह पशु पागल लगने लगे। इसके पूर्व भी पशु रोगी तो हो चुका होता है। यदि इसका माँस आहार में प्रयुक्त हो जाए (जो कि प्रायः होता ही है) तो उस माँसाहारी को भी वही रोग हो जाता है। माँसाहार के साथ वेक्टीरिया की भी बड़ी भारी समस्या रहती है। बेक्टीरियाँ रक्त में अतिशीघ्र ही विकसित हो जाते हैं। वधोपरान्त तुरन्त ही माँस में निहित रक्त बेक्टीरिया ग्रस्त होकर सड़ने लग जाता है। इस दूषित माँस का आहार करने वाले चाहे उसे कितना ही ताजा मानें, किन्तु माँस के साथ उनके शरीर में बेक्टीरिया भी पहुँच जाते हैं। माँस तो पचकर समाप्त हो जाता है, किन्तु बेक्टीरिया पनपते ही रहते हैं जो आजीवन माँसाहारी का पीछा नहीं छोड़ते और भाँति-भांति के घातक और भयावह रोगों को उत्पन्न करते रहते हैं।

इन सभी परिस्थितियों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सामिष भोजियों को यह जान लेना चाहिए कि वे केवल माँस नहीं, दूषित माँस आदि का उपभोग करते हैं और वह संकट से मुक्त नहीं है। जैसा कि पूर्व पंक्तियों में वर्णित है शाकाहार ऐसे सभी संकटों से मुक्त है। वही विवेकशीलजनों के लिए चयन योग्य है। माँस मनुष्य के आहार हेतु बना ही नहीं। अण्डा तो किसी के लिए भी खाने की वस्तु नहीं है, वह तो प्रजनन प्रक्रिया की एक अवस्था विशेष है। उसे खाद्य रूप में प्रकृति ने बनाया ही नहीं। वास्तविकता यह है कि अण्डा, माँस, मछली आदि सभी माँसाहार मनुष्य के लिए भोज्य रूप में अप्राकृतिक पदार्थ हैं। इन्हें आहार रूप में ग्रहण करना अप्राकृतिक कृत्य है जो अपने परिणामों में निश्चित रूप से घातक और हानिप्रद ही सिद्ध होता है।

बेहतर क्या है : माँसाहार अथवा शाकाहार :

प्रबुद्धजन धीरे-धीरे माँसाहार के गुणगान को मिथ्या और शाकाहार के औचित्य को स्वीकारने लगे हैं। अमेरिका के हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. व्हाइट सन् १९६४ ई. में भारत आए। काश्मीर में उनकी भेंट वहाँ के आदिवासी हुंजा कबीलों से हुई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि हुंजा कबीलों में अनेक लोग १० से ११० वर्ष की आयु के हैं और वे सभी पूर्णतः स्वस्थ हैं। डॉ. व्हाइट ने १० वर्ष से उच्च आयु के २५ हुंजाओं का परीक्षण किया और पाया कि उनमें से एक भी रक्तचाप या हृदय रोग से पीड़ित नहीं है। उन्होंने अपना शोध लेख अमरीका की शीर्ष पत्रिका "हार्टजर्नल" में प्रकाशित किया और इस लेख में उन्होंने हुंजा जाति के लोगों में हृदय रोग नहीं होने का श्रेय उनकी आहार प्रणाली को दिया। यह सारी की सारी जाति शाकाहारी है।

माँसाहार का भला ऐसा करिश्मा कहाँ!

बात प्रथम विश्व युद्ध की है जब डेनमार्क की नाकाबंदी कर दी गई थी। उस देश में खाद्य संकट उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। तब वहाँ माँसाहार बन्द कर दिया गया। अन्न पर देशवासियों को रखा गया। इस व्यवस्था के समय एक समय एक वर्ष में वहाँ की मृत्यु दर ३४ प्रतिशत कम हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ऐसी स्थिति डेनमार्क में भी आयी। माँस बंदी के कारण वहाँ भी रक्त संचार सम्बन्धी रोगों में उल्लेखनीय कमी आई। इन घटनाओं ने विश्व को माँसाहार विरोधी सोच के लिए प्रेरित किया। इसी समय ब्रिटेन में भी माँस आपूर्ति में कमी आयी। सार्वजनिक स्वास्थ्य में इससे वहाँ बड़ी प्रगति हुई। शिशु मृत्यु दर में कमी आने के साथ-साथ वहाँ रक्ताल्पता के रोग में भी भारी गिरावट आयी। ये प्रमाण है माँसाहार से शाकाहार की श्रेष्ठता के। माँसाहार व्याधियों का आगार है तो शाकाहार रोग मुक्ति का द्वार है।

मानसिक पतन का आधार : माँसाहार

आहार का उद्देश्य शरीर के विकास तक ही सीमित नहीं होता, उसका प्रयोजन मन के विकास का भी रहता है। शाकाहार द्वारा तो यह शर्त पूर्ण हो जाती है किन्तु माँसाहार इस दिशा में सक्रिय नहीं है। आहार से मानसिक, मानसिक से बौद्धिक और अध्यात्मिक उन्नति की सिद्धि होनी चाहिए। श्रीमद्- भागवत् में भोजन को वर्गीकृत कर तीन श्रेणियों में रखा गया है–

१. सात्विक भोजन

२. राजसिक भोजन और

३. तामसिक भोजन

सात्विक भोजन में फल, सब्जी, अन्न, दलहन (दालें) दूध, मेवे, मक्खन इत्यादि सम्मिलित होते हैं और इस प्रकार का भोजन मनुष्य की आयु और शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। यह शक्तिवर्धक भी होता है और मानवोचित मनोवृत्तियों को बढ़ावा देता है। आहारी को सात्विक भोजन सुख, शांति, करुणा, अहिंसा की भावना से परिपूर्ण करता है। यह मन को राक्षसी गलियों में विचरण नहीं कराता। मनोमस्तिष्क की पतन से रक्षा करने वाला यह एक सबल साधन है। राजसिक भोजन में अति गर्म, तीखे, चटपटे, खट्टे, तीक्ष्ण मिर्च-मसाले युक्त व्यंजन सम्मिलित होते हैं। ये रूखे और जलन पैदा करने वाले पदार्थ होते हैं। यह भोजन उत्तेजना उत्पन्न करने व बढ़ाने वाला होता है। यह रोग, दुःख, चिन्ता व तनाव को जन्म देता है। निकृष्ट कोटि का भोजन होता है–तामसिक भोजन! बासी, सड़े-गले, नीरस, अधपके, दुर्गे-पयुक्त खाद्य पदार्थ इस श्रेणी में आते हैं। तामसिक भोजन क्रोध, हिंसा, विद्वेष का जागृत और प्रबल बनाता है। यह भोजन मन का पतन करता है, कुसंस्कारों की ओर उन्मुख करता है, बुद्धि को भ्रष्ट करता है, चरित्र का नाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है, रोगों को उत्पन्न करता है, आलस्य और निष्क्रियता का अभिशाप देता है। शाकाहार प्रथम वर्ग का सात्विक भोजन है और माँसाहार इस हीन कोटि का तामसिक भोजन है। आदर्श भोजन तन मन और आत्मा का विकास करता है, स्नेह, प्रेम, दया, करुणा, शांति, अहिंसा का विस्तारक होता है। इस कसौटी पर सामिष आहार खरा नहीं उतरता। कहा जाता है कि किसी व्यक्ति की रुचि का व्यंजन जानकर उसके चरित्र, आचरण और मनोवृत्तियों का पता लगाया जा सकता है। जैसा भोजन वह करता है–वैसा ही उसका आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व होता है, वैसा ही उसका व्यवहार होता है। माँसाहारियों के विषय में कहा जा सकता है कि वे प्रायः क्रूर, क्रोधी, अकरुण, हिंसाप्रिय, निमर्म और हृदयहीन होते हैं। ग्वालियर में ४०० बंदियों का सर्वेक्षण किया गया था। इनमें से २५० माँसाहारी और १५० शाकाहारी थे। माँसाहारी बन्दियों में से ८५ प्रतिशत ऐसे थे जो अशान्त, अधीर, क्रोधी और कलह प्रिय थे। हिंसा में वे कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मानते थे। किन्तु शाकाहारी बन्दियों में से ९० प्रतिशत शान्तिप्रिय प्रसन्नचित्त, दयालु, सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनशील थे। कहा जा सकता है कि माँसाहार असुरत्व का मार्ग है तो शाकाहार देवत्व के समीप पहुँचाता है। मनुष्य को मानव बनाने वाला माँसाहार नहीं, शाकाहार ही हो सकता है। माँसाहार का क्षय हो! शाकाहार की जय हो!!

मनुष्य स्वाभाविक रूप से सामिष नहीं होता। उसका जन्म निरामिष रूप में ही होता है। दुग्ध जैसा निर्दोष और पवित्र पदार्थ उसका पोषण करता है। यह तो एक दुरभिसंधि है जो उसे माँसाहारी बना देती है। शिशु मन से शांति, मैत्री, करुणा और अहिंसा का प्रतीक होता है। जब उसे पहली बार माँसाहार कराया जाता है तो उसे वह रुचिकर प्रतीत नहीं होता। इसके पीछे की हिंसा, क्रूरता उसे विचलित करती है। उसे जानकर इस कुपथ पर लगाया जाता है। यही षड्यन्त्र या दुरभिसंधि है भावी पीढ़ी को भ्रष्ट करने की। क्या अभिभावकों का यही कर्तव्य है, अपनी संतति के प्रति।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का छोटा पुत्र गम्भीर रूप से रुग्ण था। मरणासन्न शिशु के लिए चिकित्सकों ने माँस का सूप निर्धारित किया। बापू से कहा गया कि बच्चे को बचाना हो तो यही एक उपाय है। किन्तु बापू का दृढ़ निश्चय दृढ़तर हो गया। उन्होंने कहा कि चाहे जो परिणाम हो बच्चे को हम माँस का सूप नहीं देंगे। यह बापू की कठोर परीक्षा थी, जिसमें वे सफल हुए। बच्चे के प्राण चमत्कारिक रूप में, बिना सूप दिए ही बच गये। जहाँ संकल्प की दृढ़ता हो, वहाँ कुछ भी असम्भव नहीं!

आवश्यकता इस बात की है कि भ्रांतियों के कुहासे से बाहर निकल कर हम माँसाहार को उसके नग्न रूप में देखें, पहचानें उसके राक्षसत्व को और तब उसका संग न करने का निश्चय करें। इस व्याधि के केन्द्र का परित्याग जितना ही शीघ्र किया जायेगा-उतना ही शुभकारी होगा। जो जाग गये हैं उनका दायत्वि (नैतिक) है कि गहरी नींद नें सोयों को झिंझोड़ कर जगायें। यदि हमने एक माँसाहारी को भी इस मार्ग से हटाकर शाकाहारी बनाया तो यह एक पुण्य कार्य होगा। ●●

आत्म पहचानो

मत फँसो मोह मंझार । आत्म-पहचानो ॥टेर॥

भौतिक सुख को मानते अपने पर यह सारे झूठे सपने ॥
कहते जगदाधार । आत्म पहचानो ॥१॥

धर्म पुण्य से रहते दूरे । पाप कर्म करने में शूरे ॥
जाते नरक द्वार । आत्म पहचानो ॥२॥

धर्म ध्यान में चित्त लगाना । अपने आपको जल्दी जगाना ॥
कहे "पुष्कर" अनगार । आत्म पहचानो ॥३॥

–उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि
(पुष्कर-पीयूष से)

सन्दर्भ स्थल

१. शाकाहार-मानव सभ्यता की सुबहः विश्व स्वास्थ्य संगठनः बुलेटिन नं. ६३७
२. ब्रिटेन के डॉ. एम. रॉक
३. पोषण का नवीनतम ज्ञान (डॉ. इ. बी. एमारी) : रोगियों का प्रकृति (डॉ. इन्हा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org